वेदेषु=वेद-स्वाध्याय में; **यज्ञेषु**=यज्ञ करने में; **तपःसु**=विविध तपों में; **च**=भी; **एव**=निःसन्देह; **दानेषु**=दान देने में; **यत्**=जो; **पुण्यफलम्**=पुण्यफल; **प्रदिष्टम्**=कहा है; **अत्येति**=उल्लंघन कर जाता है; **तत्**=उस; **सर्वम्**=सबका; **इदम्**=इस ज्ञान को; **विदित्वा**=जानकर; **योगी**=भक्त; **परम्**=सर्वोपरि; **स्थानम्**=धाम को; **उपैति**=प्राप्त हो जाता है; **च**=तथा; **आद्यम्**=अनादि।

अनुवाद

भक्तियोगी वेद-स्वाध्याय, तप, यज्ञ, दान तथा दार्शनिक-सकाम क्रियाओं के सम्पूर्ण पुण्यफल का उल्लंघन कर अन्त में मेरे अनादि परम धाम को प्राप्त हो जाता है।।२८।।

तात्पर्य

यह श्लोक सातवें और आठवें अध्याय में आए कृष्णभावनामृत और भक्तियोग के विशेष वर्णन का उपसंहार है। गुरु के आश्रय में वेदाध्ययन तथा तपश्चर्या के अनुशीलन को नितान्त आवश्यक माना गया है। ब्रह्मचारी का धर्म है कि सेवक की भाँति गुरुकुल में निवास करते हुए द्वार-द्वार से भिक्षा माँगे और जो कुछ मिल जाय उसको गुरु को समर्पण करे। इसके बाद गुरु की आज्ञानुसार भोजन करे। यदि किसी दिन गुरु उसे भोजन के लिए न कहें तो उस दिन उपवास रखे। ये ब्रह्मचर्यव्रत के कतिपय वैदिक सिद्धान्त हैं।

जो पाँच से बीस वर्ष की आयु के बीच गुरु के आश्रय में वेदाध्ययन करता है, वह परम चरित्रवान् बन जाता है। वेदाध्ययन का वास्तविक प्रयोजन विषयी मनोधर्मियों का मनोरंजन करना न होकर चरित्र-निर्माण करना है। इस प्रशिक्षण के बाद ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर सकता है। गृहस्थाश्रम में भी बहुत से यज्ञ और परमार्थ-साधन करना आवश्यक है। तदुपरान्त, गृहस्थ से निवृत्त होकर 'वानप्रस्थ' अंगीकार करने पर वनवास, छालवसन धारण, अक्षौर आदि तपश्चर्या का सेवन करना चाहिए। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा अन्त में संन्यास धर्म के पालन से जीवन की संसिद्धि हो जाती है। इनमें से कुछ साधक स्वर्गीय लोकों को जाते हैं; फिर वहाँ और अधिक उन्नति कर लेने पर परव्योम की निर्विशेष ब्रह्मज्योति, वैकुण्ठ लोकों या कृष्णलोक में मुक्ति-लाभ करते हैं। वैदिक शास्त्रों में इस पथ का दिग्दर्शन कराया गया है।

परन्तु कृष्णभावनामृत की अनुपम सुन्दरता इसमें है कि भक्त पुरुष केवल भक्ति करके जीवन के इन सभी आश्रमों के सम्पूर्ण कर्मकाण्ड का उल्लंघन कर लेता है।

गीता के सातवें और आठवें अध्यायों को विद्वत्ता अथवा मनोधर्मी से समझने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। इन्हें शुद्धभक्तों के सत्संग में सुनकर हृदयगंम करने का प्रयास करे। छठे अध्याय से बारहवें अध्याय तक के छः अध्याय गीता के सार-सर्वस्व हैं। यदि कोई भाग्यवान् सत्संग में गीता को, विशेष रूप से इन छः अध्यायों को आत्मसात् कर ले, तो उसका जीवन ऐसी दिव्य कीर्ति-सौष्ठव से सुवासित